E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
Impact Factor: RJIF 5.12
IJAAS 2020; 2(3): 27-28
Received: 06-06-2020
Accepted: 19-07-2020

डॉ० धर्मवीर
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत साहित्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ० धर्मवीर
सहायक, प्राध्यापक, संस्कृत साहित्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, भागलपुर, बिहार, भारत

संस्कृत नाट्याभिनय में रङ्गमञ्च एवं आधुनिक पुस्तप्रयोग–एक चिंतन

डॉ० धर्मवीर

प्रस्तावना

आहार्य अभिनय के चार प्रकार हैं– पुस्त, अलङ्कार, अंगरचना और संजीव [1]। इनमें पुस्त–रचना इसलिए सबसे महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसी के द्वारा रङ्गमण्डप पर दृश्य–विधान किया जाता है। 'पुस्त' शब्द का अभिप्राय है– लेप करना, रेखाचित्र बनाना तथा मिट्टी, काष्ठ या किसी धातु का शिल्पकार्य [2]। अतः लेपनादि के द्वारा मिट्टी, काष्ठ, वस्त्र, चर्म, चटाई, बाँस, भोजपत्र, लाख, मोम, अभ्रक आदि तत्त्वों से नाट्य में प्रयुक्त अपेक्षित पदार्थों, यथा–रथ, विमान, हाथी, घोड़े, भवन, प्रासाद, शैल आदि के सांङ्केतिक प्रतिरूपों की रचना को ही 'पुस्त' कहा जाता है [3]। नाट्यविदों के द्वारा देव–दानवों, यक्ष–हाथियों, घोड़ों और पक्षियों के प्रतिशीर्ष [4] (मुखौटे) पुस्त तकनीक (विद्या) से तैयार कर रङ्गमञ्च पर प्रस्तुत किये जाते हैं, जिससे नाट्यप्रयोगों में सजीवता आ जाती है। नाट्यशास्त्र नृत्तरत्नावली, नृत्यरत्नकोश, नर्तननिर्णय सङ्कीतार्ण चन्द्रिका और सङ्गीतनारायण में पुस्तरचना की तीन विधियाँ [5] बतायी गयी हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. **सन्धिम**
   'सन्धिम' विधि के अन्तर्गत चटाई, बाँस, भोजपत्र, चर्म, वस्त्र आदि विभिन्न पदार्थों को आपस में बाँधकर, जोड़कर चिपकाकर अथवा सीलकर वृक्ष, नदी, पर्वत, यान, विमान, मकान, प्रासाद, रथ, वाहन, हाथी, घोड़ों आदि नाट्योपयोगी पदार्थों का निर्माण किया जाता है [6]।

2. **व्याजिम**
   'व्याजिम'विधि यान्त्रिक विधि है, जिसमें विभिन्न यन्त्रों की सहायता से रथ–यान, पशु–पक्षी आदि भौतिक पदार्थों को रङ्गमञ्च पर उपस्थित किया जाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर इन्हीं यान्त्रिक साधनों के द्वारा मंच पर इन पदार्थों को कृत्रिम गति भी प्रदान की जाती है [7]। आचार्य अभिनवगुप्त, जायसेनापति और राणा कुम्भा का मत है कि ऐसे पदार्थों को सूत्र अथवा रस्सी को आगे–पीछे खींचकर गतिशील बनाया जा सकता है [8]।

3. **वेष्टिम**
   जब रङ्गोपयोगी पदार्थों का निर्माण वस्त्र, चर्म, लाख आदि वस्तुओं से आवेष्टित करके अथवा भली–भाँति लपेटकर अथवा परत चढ़ाकर किया जाए तो उसे 'वेष्टिम' पुस्त समझना चाहिए [9]। इसे 'चेष्टिम' भी कहा जाता है।

पुस्त–निर्माण एवं प्रस्तुतीकरण के सन्दर्भ में भरतादि के समय में यान्त्रिक साधनों के उन्नत न होने के कारण सम्भवतः सन्धिम और वेष्टिम विधियाँ ही अधिक उपयोगी सिद्ध होती होंगी, लेकिन आज रङ्गमञ्चीय यन्त्रों की समृद्धि ने व्याजिम विधि को पुस्त–आहार्य का प्रमुख एवं सशक्त प्रकार बना दिया है, तथापि सन्धिम और वेष्टिम विधियाँ आज भी पुस्त आहार्य का आधार रूप ही हैं।
इन्हीं तीनों विधियों का आश्रयण करके संस्कृत रूप को एवं काव्यों में वर्णित पर्वत, प्रासाद, वाहन, विमान, पशु, पक्षी आदि के वर्णनों को मञ्च पर रूपायित किया जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मृच्छकटिकम् और बालरामायण में क्रमशः रथ, नौका, मिट्टी की गाड़ी और रावण के पुष्पक विमान की रङ्गमञ्च पर उपस्थिति पुस्त की सन्धिम आदि तीनों विधियों पर आश्रित है [10]। हर्ष की रत्नावली के वानर, अभिज्ञानशाकुन्तल के मृगशावक और सिंहशावक, दूतवाक्य के गरुड़ तथा राम–सम्बन्धी रूपकों के जटायु, गिद्ध तथा हनुमान–सुग्रीवादि वानरों के प्रतिशीर्ष [11] इन्हीं सन्धिम और वेष्टिम विधियों द्वारा तैयार किये जाते हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण अथवा स्वप्नवासवदत्तम् की घोषवती वीणा, प्रतिमा नाटक में मनु, दिलीप, रघु आदि दिवंगत राजाओं की मूर्तियाँ तथा बालरामायण के मनुष्यधारी शङ्ख, चक्र, शाङ्र्ग आदि सभी प्रयोग पुस्त–आहार्य द्वारा सम्पन्न हो पाते हैं [12]।

इतना ही नहीं, संस्कृत के कुछ नाटककारों ने स्वयं अपनी रचनाओं की कथावस्तु में इन पुस्त विधियों द्वारा निर्मित पदार्थों का समावेश किया है। राजशेखर के बालरामायण में कामोन्मत्त दशानन की कामशान्ति हेतु 'यन्त्रनिर्मित जानकी' की कल्पना इसी शैली में है। हनुमन्नाटक में रावण द्वारा मायानिर्मित रामलक्ष्मण के मस्तकों का कथन किया गया है। कथासरित्सागर में वत्सराज उदयन की कथाओं में 'यन्त्रनिर्मित हाथी' का उल्लेख मिलता है तो भास रचित प्रतिज्ञायौगन्धरायण में यौगन्धरायण ने मल्लिका लता एवं साल के वृक्षों से ढके हुए तथा नख–दन्त से रहित 'नीलबलाहक' नामक हाथी का सङ्केत किया है [13]। क्योंकि भास आचार्य भरत से 300–400 वर्ष पूर्व हुए, इसलिए यह कहा जा सकता है कि उक्त पुस्तविधि भरत से पूर्व भी नाट्यविदों को भली–भाँति ज्ञात थी, जिसका वे आवश्यकतानुसार प्रयोग रङ्गकर्म में करते थे। स्वयं आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में पुस्तविधि से सम्पन्न होनेवाले पदार्थों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है। नाट्योत्पत्ति के प्रसङ्ग में नाट्यशास्त्र के प्रथमाध्याय में जर्जर, दण्डकाष्ठ, छत्र, चामर, मुकुट, भृङ्गार (कलश) आदि का निर्देश तथा गतिप्रचाराध्याय में विभिन्न स्तरों के पात्रों, जैसे–राजा–मन्त्री, युवराज, महारानी तथा समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों के लिए प्रयुज्य सिंहासन, वेत्रासन, कुशासन काष्ठासनादि का जो कथन भरत ने किया, उन सबका सङ्कलन भी पुस्तश्रेणी में किया गया [14]।

नाट्यशास्त्र में इनका नामनिर्देश मात्र ही नहीं है, अपितु दण्डकाष्ठ, जर्जर, प्रतिशीर्ष, मुकुट, आभूषण, पर्वत, प्रासाद, फल–फूल–बर्तन और अस्त्र–शस्त्रादि के निर्माण की स्पष्ट एवं सम्पूर्ण विधि भी नाट्यविदों को भरत ने समझायी [15]।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण, नृत्तरत्नावली आदि के समय तक आते–आते रङ्गकर्मी इन पुस्तप्रयोगों में सिद्धहस्त हो चुके थे। सम्भवतः इसीलिए विष्णुधर्मोत्तरकार और जायसेनापति आदि ने उक्त निर्माण–विधि पर चर्चा करना आवश्यक नहीं समझा।

पुस्त–निर्माण के सन्दर्भ में भरत के विधि–निषेध

नाट्यकथावस्तु की आवश्यकतानुसार नाट्य में प्रयुक्त युद्ध एवं नियुद्ध (बाहुयुद्ध) आदि के दृश्यों को रोमाञ्चकारी एवं प्रभावी बनाने के लिए दण्ड, ढाल, शूल, तोमर, शक्ति, भाला, शतघ्नी, धनुष, बाण, गदा, वज्र, तलवार इत्यादि अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों की रचना एवं प्रयोग पर विचार किया गया है। अस्त्र–शस्त्र एवं आभूषणों के सम्बन्ध में आचार्य भरत ने कुछ विधि–निषेध भी किये हैं। भरत का कहना है कि रङ्गकर्म में प्रयुक्त ये अस्त्रादि लौकिक पदार्थों की अनुकृतिमात्र होनी चाहिए, उनके वास्तविक रूप नहीं। इनके निर्माण हेतु घास, बाँस, उसकी पत्तियाँ एवं खपच्चियाँ, लाख, मधु, तुम्बी आदि हलके पदार्थों को ग्रहण करना चाहिए, न कि लोहे–पत्थर आदि भारी वस्तुओं को। वजनदार अस्त्र–शस्त्रादि के प्रयोग के सम्बन्ध में भरत का दूसरा विधिनिषेध यह है कि रङ्गमञ्च पर हथियारों का वास्तविक प्रहार (प्रयोग) नहीं करना चाहिए और न ही किसी पात्र का छेदन अथवा ताड़न करना चाहिए। दूर से ही इनका अङ्गों से स्पर्शमात्र कराना चाहिए [16]। इस स्पर्श से किसी भी प्रकार की शरीर–हानि नहीं होनी चाहिए। यदि कभी यथार्थप्रदर्शन हेतु रक्तस्त्राव दिखाना भी पड़े तो पुस्तविधि द्वारा इसे सम्भव बनाना चाहिए।

आचार्य भरत इस बात से भी परिचित थे कि स्वर्ण–रत्नादि बहूमूल्य पदार्थ आसानी से उपलब्ध नहीं होते। इसलिए मुकुट आदि आभूषणों का निर्माण वस्त्र, मोम, अभ्रक, ताँबे के द्वारा करना चाहिए, क्योंकि भारी गहनों से लदे रहने पर पात्रों को युद्ध, नृत्यादि के प्रदर्शन में पसीना अथवा बेहोशी आ सकती है [17]।

आचार्य भरत के द्वारा नाट्य–सफलता हेतु पुस्तविधि का यह विस्तृत विधान उनकी अतिशय प्रतिभा का सूचक है। सम्भवतः उनके इसी विश्व पुस्त–निरूपण को देखकर पुराणकार और जायसेनापति आदि ने इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा करना जरूरी नहीं समझा। फिर भी जहाँ भरत पुस्त–निर्माण सामग्री में लोहे जैसी भारी धातुओं का निषेध करते हैं, वहीं पुराणकार, नीलकण्ठ और नारायण लोहे के प्रयोग की स्वीकृति देते हैं [18]। सम्भवतः यहाँ पुराणकार का अभिप्राय लोहे की हलकी–पतली चादरों और उनके खोखले पाइपों से हो, तथापि पुराणकार आदि का यह मत इस कड़ी के विकास का सूचक है।

आधुनिक पुस्त–रचना–

1. **आधुनिक पुस्त उपकरण एवं दृष्टिकोण –** आधुनिक युग में परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। आज के नये युग में मनुष्य के उपेयाग हेतु नयी–नयी वस्तुएँ एवं नए–नए पदार्थ उभरकर आए हैं। प्राचीन आचार्यों द्वारा कथित मिट्टी, वस्त्रादि पुस्त–उपकरणों के अतिरिक्त आजकल प्लाईवुड, थर्मोकोल, कागज, गत्ते, पलास्टर ऑफ पेरिस, फाइवरग्लास, प्लास्टिक, पॉलिथिन, लोहे, एल्युमीनियम, गोबर, फर, नैट, फोम आदि का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होने लगा है। विभिन्न वस्तुओं के निर्माण में पदार्थों को परस्पर चिपकाने हेतु आज के नाट्यविद् केवल बेल के घोल और आटे की लेई पर निर्भर न रहकर फेविकोल एवं उत्तम श्रेणी के गोंद (एडैसिव) का प्रयोग करने लगे हैं। पुस्त–सामग्री को अधिक आकर्षक एवं यथार्थ बनाने में अब नाट्यविद् केवल प्राकृतिक रङ्गों पर आश्रित न रहकर प्लास्टिक पेंट, इनेमल पेंट, पोस्टर कलर आदि कृत्रिम रङ्गों का भी प्रयोग करने लगे हैं, क्योंकि ये रङ्गसुलभ हैं ही, इनके परिणाम प्राकृतिक रङ्गों की अपेक्षा अच्छे रहते हैं। लोहे और एल्यूमीनीयम के अन्तर्गत लोहे आदि की तारों, चादरों, पाइपों, ऐंगल, नट–बोल्ट्स, कीले, क्लिप्स, हैंडल, चक्र आदि का प्रयोग होता है। पाइपों, एंगल, नट–बोल्ट्स, क्लिप्स आदि की सहायता से आजकल ऐसे दृश्यबन्ध बनाये जाते हैं, जो फोल्डिंग होते हैं।

   आज के नाट्य–प्रयोक्ता पुस्त–नेपथ्य को क्रियान्वित करते हुए इसके उत्पादन और निर्माण के प्रति चार प्रकार की दृष्टियाँ रखते हैं। पहली तो यह कि पुस्त–निर्माण हेतु ऐसे पदार्थों का चयन जो सरलता से उपलब्ध हो सके। दूसरी–रूपकों के मञ्चन के समय रङ्गमञ्च के दृश्यबन्ध (पुस्तप्रतिरूपों) दृश्यानुसार बदलने में आसान और सुविधाजनक हो, अर्थात् श्रमसाध्य एवं अधिक समय लेनेवाली न हो। तीसरी यह है कि नाट्यमञ्चन हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर (अथवा एक शहर से दूसरे शहर में) ले जाने में सुविधाजनक हो, अर्थात् उनका स्वरूप फोल्डिंग हो। आखिरी यह कि आज के नाट्यविद् ऐसी पुस्त–सामग्री पसन्द करते हैं, जो लम्बे समय तक काम देनेवाली हो, अर्थात् दीर्घजीवी हो।

2. **कुछ आधुनिक पुस्त–निर्माण व प्रयोग–** आज के नाट्य की भाषा में उक्त पुस्त–सामग्री को प्राप्स प्रोपर्टी कहा जाता है। आज भी नाट्य–उपस्थापक प्राचीन आचार्यों द्वारा कथित सन्धिम–वेष्टिम विधियों का आश्रयण कर रङ्गोपयोगी पुस्ताकृतियों की रचना करते हैं अथवा करवाते हैं। नाट्य की कथावस्तु के अनुरूप वृक्ष, स्तम्भ, द्वार, वातायन, दीवार, भवन, प्रासाद आदि का कैनवस या प्लाईवुड पर रेखाङ्कन कर कट–आऊट कर लिया जाता है और फिर उसपर अपेक्षित आकृति के अनुरूप चित्रकारी कर दी जाती है। गाड़ी, रथ, विमान आदि वाहनों तथा छत्र आदि के निर्माण के लिए उनकी आकृतियों के अनुरूप लोहे अथवा लकड़ी के फ्रेम तैयार कर उसे वस्त्रादि से आवेष्टित कर दिया जाता है। इस प्रकार का प्रयोग प्रो० रीता कोठारी द्वारा निर्देशित 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में देखा गया है, जिसमें उर्वशी को ले जाने हेतु इसी प्रकार के कृत्रिम रथ का निर्माण किया गया था। कागजों, थर्मोकोल और विभिन्न रङ्गों से इन

पदार्थों को कलात्मकता प्रदान की जाती है। गाड़ी व रथ को यथास्थान चक्रों के द्वारा तथा विमान को रङ्गाकाश में लगी घिरनी (पर लगी रस्सी आदि) के बल पर गति प्रदान की जाती है जबकि कभी–कभी इनपर आरूढ़ होनेवाले पात्र इनमें प्रवेशकर स्वयं चलकर इन्हें गति प्रदान करते हैं। यथा अभिशाप–नाटक के अन्तर्गत मञ्चित 'विक्रमोर्वशीय' में युद्ध के समय उर्वशी और उसकी सखियाँ केवल वस्त्र से आवेष्टित रथ के आयताकार ढाँचे में प्रवेशकर स्वयं गति प्रदान कर रही थीं। पर्वतों के निर्माण के सन्दर्भ में तो प्लाईवुड आदि के अभीष्ट आकार में कट–आउट कर लिये जाते हैं या फिर काष्ठासन (बेंच अथवा कुर्सी) पर लकड़ी की खपच्ची लगाकर अथवा किसी भी स्टैंड पर (+आकारवाला) कोई वस्त्र डालकर, उसपर प्लास्टर ऑफ पेरिस का गाढ़ा घोल डाल दिया जाता है और सूखने पर अपेक्षित रङ्ग कर दिए जाते हैं।

विभिन्न प्रकार के पुष्प और गजरें (वेणियाँ) कागज, कपड़े, पॉलिथिन, प्लास्टिक और सोलोवुड (वसवूववक) से बनाये जाते हैं, जबकि फल व पक्षी मिट्टी, कागज, प्लास्टर ऑफ पेरिस, प्लास्टिक आदि से।

पेपरमैशी कला के द्वारा बननेवाले फल, सब्जी, पक्षी, बर्तन, मूर्तियाँ, विभिन्न प्रकार के मुखौटे एवं अनेकानेक पुस्त–आकृतियाँ हलकी, आकर्षक एवं जीवन्त सदृश होती हैं तथा प्लास्टर ऑफ पेरिस की तुलना में अधिक टिकाऊ भी होती हैं, तथापि अधिकांश नाट्यविद् इस कला से अनभिज्ञ होने के कारण पुस्त–निर्मिति हेतु इसका उपयोग नहीं कर पाते। लेकिन फिर भी निकट भविष्य में पेपरमैशी रङ्गकर्मीय पुस्त हेतु एक उपयुक्त साधन बन जायेगा।

वानर, सिंह, मृग आदि पशुओं की चर्म के सामान रूप–रङ्गवाले फर–वस्त्र की पोशाक बनाकर पात्रों को पहनाकर, प्रतिशीर्ष लगाकर तत्–तत् रूप में मञ्च पर उपस्थित किया जाता है। निर्देशक रतन थियम द्वारा निर्देशित अज्ञेय द्वारा रचित 'उत्तरप्रियदर्शी' में युद्धरत अशोक को पृष्ठारूढ़ किये एक हाथी और 'कलिङ्गविजय' नाटक में दूर से आते हाथियों से सुसज्जित (गजारोही) अशोक के सैन्यदल के दृश्य में एक साथ अनेक हाथियों को मञ्च पर अवतरित किया गया। अपने रूप–रङ्ग–आकार और हाव–भाव की दृष्टि से ये हाथी पुस्तकृति प्रतीत न होकर एकदम सजीव प्रतीत हो रहे थे।

प्रासाद, राजसभा, कुटिया आदि की प्रस्तुति हेतु भी प्लाईवुड और कैनवस का प्रयोग किया जाता है। प्रासादादि के विभिन अङ्गों के लिए प्लाई के अगल–अलग टुकड़ों का प्रयोग किया जाता है, जिसे 'फलक' कहा जाता है। कभी इन फलकों को आपस में नट–बोल्ट्स (पेंच) और लोहे की क्लिप्स (कब्जों) से जोड़ दिया जाता है तो कभी एक फलक के सिरे को दूसरे फलक के सिरे में फँसाकर अथवा रस्सी या लोहे के तारों से बाँधकर सेट कर दिया जाता है। इसके उपरान्त थर्मोकोल पर बेल–बूटों, पशु–पक्षी आदि आकृतियोंवाला शिल्पकार्य कर, तथा उनपर अपेक्षित रङ्ग देकर प्रासादादि को भव्यता प्रदान की जाती है ग्राम्य एवं आश्रम की उटजों हेतु इन फलकों के ऊपर कपड़ा या बोरी (पटसन से बना वस्त्र) चिपकाकर, उसके ऊपर फेविकोल मिला हुआ गोबर, मिट्टी आदि का अपेक्षित लेप कर दिया जाता है और उसकी छत दर्शाने के लिए, उसके ऊपर आगे–आगे, अर्थात् केवल सामने की तरफ सरकण्डों की घास लगा दी जाती है।

स्थापत्य–सम्बन्धी पुस्त–निर्माण में नाट्यविंदों द्वारा यह ध्यान अवश्य रखा जाता है कि मञ्चन हो रहा रूपक किस प्रदेश अथवा काल का है, ताकि वे पुस्त–रचना में उसी काल अथवा प्रदेश की स्थापत्य शैली का प्रयोग कर सकें।

3. **आधुनिक पुस्त–आहार्य के नये अङ्ग–** विज्ञान की समृद्धि एवं यान्त्रिक उपकरणों के विकास के परिणामस्वरूप आधुनिक पुस्त के रङ्गदीपन और ध्वनि–सङ्केत–ये दो नये अङ्ग बन गये। इसके अतिरिक्त विज्ञान ने और भी ऐसे रङ्गमञ्चीय यान्त्रिक साधन उपलब्ध कराये जिन्होंने पुस्त–आहार्य को गति प्रदान की। पुस्त–आहार्य के नवीन अङ्गों का वर्णन इस प्रकार है–

(क) रङ्गदीपन– (Stag Lighting) – आचार्य भरतादि के युग में गैस एवं विद्युत्–प्रकाश की सुविधा नहीं थी। फिर भी नाटक दिन में अथवा रात्रि में खेले जाते थे। दिन में मञ्चित होनेवाले रूपकों के लिए सूर्य का नैसर्गिक प्रकाश (जो नाट्यमण्डप में बने गवाक्षों से आता था) पर्याप्त रहता होगा, लेकिन सूर्यास्त के उपरान्त होनेवाले नाटकों में प्रकाश की विशेष व्यवस्था अपेक्षित रहती थी। इसके लिए तत्कालीन रङ्गकर्मी सम्भवतः दीपकों एवं मशालों का प्रयोग करते होंगे, क्योंकि रङ्गपूजन के सन्दर्भ में भरत ने दीपकों से सम्पूर्ण रङ्गस्थल को आलोकित करने की बात कही है [19]। उस समय रङ्गदीपन के समर्थ साधन अप्राप्य होने के कारण भरतादि के रङ्गदीपन का पुस्त–आहार्य के अन्तर्गत समावेश नहीं किया।

रङ्गदीपन का यह कार्य आचार्य भरतादि के युग के तेलादि दीपकों से चलकर चालीस की बत्ती और कारबाइड आर्कलैम्प से होता हुआ उन्नीसवीं सदी में विद्युत्–प्रकाश पर आ पहुँचा, जिसके बल पर रङ्गदीपन पुस्त–आहार्य एवं रङ्गमञ्चीय गतिविधियों का एक सशक्त अङ्ग बन गया।

रङ्गदीपन दीपन और सृजन नामक दो प्रकारों से नाट्यकर्म का उपकारी है। इसके दीपनकार्य द्वारा मञ्च पर उपस्थित वस्तुओं, व्यक्तियों, पदार्थों एवं क्रिया–व्यापारों को आवश्यकतानुसार दृश्य अथवा अदृश्य बना दिया जाता है।

नाट्य–प्रयोक्ता विभिन्न पात्रों के चरित्रों को इसी प्रकाश–शैली के द्वारा अधिकाधिक जीवन्त कर दिया जाता है। प्रधान एवं गौण पात्रों की भूमिकाओं का अन्तर भी प्रकाश–योजना के द्वारा निरन्तर बनाये रखा जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि नाटक के मुख्य पात्रों को अधिक भासित किया जाता है, जबकि गौण को कम। विभिन्न रसों के भावों के अनुकूल प्रकाश–रङ्गों से प्रयोगजन्य भावों को और अधिक सशक्त बना दिया जाता है, जिससे तत्–तत् रस सहज ही मुखरित हो उठता है। अभिप्राय यह, कि नाट्य–घटनाक्रम के फलस्वरूप पात्रों की परिवर्तित होती मनोवृत्तियों एवं भावों को रङ्गीन आलोक और अधिक स्पष्ट तथा रसासिक्त बना देता है। इस आधार पर पुस्त–आहार्य के इस नये अङ्ग को सात्त्विकाभिनय का पोषक भी कहा जा सकता है। रङ्गदीपन के द्वारा ही संस्कृत नाटकों की स्वगत और जनान्तिक रूढ़ियाँ सरलतापूर्वक सम्पन्न हो पाती हैं।

प्रकाश की सर्जन–शक्ति के द्वारा गगनिका (Syclorama) पर नाट्य से सम्बद्ध विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का आधान किया जाता है। पुस्त–आहार्य के अङ्गभूत आलोक–चित्र प्रक्षेपक उपकरण (Projecter) के द्वारा दृश्यानुसार पृष्ठ–पट पर वसन्ततु का स्वच्छाकाश प्रस्तुत हो सकता है तो वर्षा ऋतु की घनघोर घटाएँ तथा नभ में उमड़ते काले–घने–गरजते मेघ और चमकती बिजलियाँ। बारिश के रुकने के दृश्य में एकाएक दर्शकों के समक्ष स्वच्छ आसमान में इन्द्रधनुष उपस्थित हो जाता है। झर–झर बहता झरना हो अथवा उग्र समुद्र की लहरें, यज्ञाग्नि का आधान हो अथवा भयङ्कर दावानल का [20], आधुनिक रङ्गमञ्चीय प्रकाश–योजना द्वारा मञ्च पर सब सम्भव है। निर्देशक वेंकट शास्त्री द्वारा निर्देशित 'कीचक–वध' और 'भगवद्गीता' (गेय) रूपक में इस तरह के चमत्कारिक प्रयोग किये गये।

अभिज्ञान आदि संस्कृत नाटकों के सूर्योदय सूर्यास्त, ऋतुविपर्ययादि प्राकृतिक दृश्यों के प्रस्तुतीकरण हेतु तत्कालीन नाट्याचार्य ('चित्रप्रक्षेपक' उपकरण जैसे समर्थ साधन की

अनुपलब्धि के कारण) सङ्केतात्मक विशिष्ट मुद्राओं पर आश्रित थे तथा चित्राभिनय के द्वारा वे इन्हें अभिनीत करते थे। किन्तु आज के नाट्यनिर्देशकों के समक्ष उक्त दृश्यों के दृश्याङ्कन हेतु रङ्गदीपन और मुद्राएँ–ये दोनों विकल्प उपस्थित हैं। आज का संस्कृतेतर रङ्गमञ्च तो इस तरह की दृश्यावली के लिए केवल रङ्गदीपन पर ही आश्रित है, किन्तु संस्कृत नाट्य– निर्देशक स्वेच्छानुसार उक्त दोनों विकल्पों में से किसी एक का चयन करते हैं अथवा दोनों का मिश्र–रूप। पुरनपि, प्राकृतिक दृश्यों के अभिनेयार्थ केवल मुद्राओं का चयन कर लेने के उपरान्त भी रङ्गदीपन अपरिहार्य ही है।

राजसभा, राजमहल, अन्तःपुर, वन–उपवन, आश्रमादि परिवेशजन्य उपयुक्त वातावरण की सर्जना भी रङ्गदीपन द्वारा की जाती है। इतना ही नहीं, किसी स्थान, मार्ग एवं काल की स्थिति अथवा व्यय का निर्देश भी चल–प्रकाश द्वारा सरलतापूर्वक कर दिया जाता है। भरत के समय में मार्ग, कालादि के व्यय के लिए कक्ष्याविधि का अथवा वाचिक सूचनाओं का आश्रय लिया जाता था, किन्तु आज इन दोनों के साथ–साथ प्रकाश–पुञ्ज के द्वारा मार्ग–व्यय, काल–व्यय तथा स्थान– परिवर्तन को और अधिक बोधगम्य एवं सुस्पष्ट बना दिया जाता है। कावालम नारायण पणिक्कर द्वारा प्रस्तुत 'कर्णभारम्' रूपक में महाभारत युद्धक्षेत्र में कर्ण द्वारा (अपने शस्त्रों को निरर्थक हुआ जान) परशुराम के शाप रूपी पूर्ववृत्त का स्मरण, कुन्ती का कर्ण से मिलने का पूर्व वृत्त इसी शैली में रूपायित किये गये। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में यौगन्धरायण और वासवदत्ता के अग्नि में जल मरने के वृत्त भी पणिक्कर ने इसी शैली में प्रस्तुत किये थे।

इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में जो सूचनाएँ विषकम्भक आदि अर्थोपक्षेपकों के द्वारा पात्रों के परस्पर बातचीत के द्वारा दी जाती थी, वे भी अधिकतर अब गगनिका पर तेजपुञ्ज के माध्यम से दे दी जाती है, जैसे किसी की मृत्यु का समाचार देने के लिए पृष्ठ–पट पर धीरे–धीरे एक रक्त–रेखा नीचे से ऊपर की ओर उभरती है और ठीक मध्य से कुछ ऊपर जाकर रुक जाती है। इस तरह बिना वाचिक सूचना के मौन अभिव्यक्ति द्वारा ही प्रेक्षक इस कथ्य को समझ जाते हैं। निर्देशक वेंकट शास्त्री द्वारा निर्देशित, 'कीचक–वध' रूपक में कीचक का वध होते ही गगनिका रक्तिम हो उठती है।

रङ्गदीपन के छाया–सिद्धान्त (Shadow Theory) के अन्तर्गत प्रकाश और छाया के समन्वय से छाया–दृश्यों की अद्भुत सर्जना की जाती है। इस प्रक्रिया में सम्पूर्ण मञ्च पर अथवा मञ्च के अपेक्षित अंश को अन्धकार में रखकर, श्वेत पृष्ठ–पट के पीछे से छायादीप (Shadow–Lamp) के द्वारा प्रकाश डाला जाता है तथा पट के पीछे से ही अभिनय–व्यापार सम्पन्न किया जाता है। इस प्रक्रिया में गगनिका अथवा अपेक्षित पट के पीछे हो रहे क्रिया–व्यापारों की केवल छाया पट के ऊपर उभरकर आती है, अर्थात् पात्रों की आकृतियाँ मात्र होती हैं, भाव–विशेष नहीं। गम्भीरता, भय, त्रासदी और भावोत्तेजना से युक्त जो दृश्य प्रेक्षकों के समक्ष साक्षात् प्रस्तुति के योग्य नहीं होते, उनका प्रस्तुतीकरण इस विधि द्वारा अधिक रोमाञ्चकारी बन जाता है। रा०ना०वि० में प्रसन्ना जी द्वारा निर्देशित (1991ई०) 'उत्तररामचरितम्' में छाया सीता का दृश्याङ्कन इसी शैली में किया गया।

अतिप्राकृतता का सत्याभास देने के लिए भी रङ्गदीपन का कलात्मक प्रयोग उल्लेखनीय है। पणिक्कर द्वारा निर्देशित 'मध्यम–व्यायोग' रूपक में घटोत्कच की विशालकाय और भयावह आकृति प्रकाश की इसी शैली से और अधिक मुखरित हो उठी थी।

(ख) ध्वनि– चूँकि रूपक काव्य की एक दृश्य–श्रव्य विधा है, अतः जितना चाक्षुष प्रत्यक्ष करके सामाजिक रसानुभूति करता है, उतनी ही उपयोगिता उस अनुभूति को पुष्ट करने में श्रव्य उपकरणों की भी होती है। नाट्यशास्त्र में इस सन्दर्भ में यह निर्देश है कि नट के द्वारा उच्चार्यमाण संवादों के अतिरिक्त वाद्ययन्त्रों के द्वारा उत्पन्न ध्वनियों से अभिव्यक्तियों को प्रभावपूर्ण बनाया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में भरत विभिन्न प्रकार के वाद्यों तथा उनसे पैदा होनेवाले ध्वनिप्रभावों का विस्तृत वर्णन करने में सन्नद्ध हैं [21]। आजकल इन यन्त्रों के अतिरिक्त पहले से ही रिकॉर्ड पर रखे हुए ध्वनिप्रभावों का प्रयोग किया जा रहा है। आधुनिक जीवन में प्रयोग होनेवाले बिजली आदि उपकरणों, यथा–धूम्रयन्त्र (Smokcoan) की सहायता से भी रङ्गमञ्च पर प्रभाविता उत्पन्न की जा रही है।

अस्तु, लगभग ढाई सहस्त्र वर्षों की इन नाट्यप्रयोग मात्रा में पुस्त का प्रयोग किसी न किसी रूप में सतत होता रहा है। प्रत्येक युग तथा देश में उपलब्ध संसाधनों के द्वारा अभिव्यक्तियों को इनके माध्यम से संवेगी एवं प्रभावी बनाया जाता रहा है। आज संसाधनों की क्रांति ने इस विधि को आमूल परिवर्तित कर दिया है। पुनरपि, प्राचीन आचार्यों की उपजीव्यता निःसन्दिग्ध है। विशेष रूप से ध्वनि और प्रकाश के संयोजन से तो रङ्गमञ्च एक सर्वथा नवीन रूप में ही उपस्थित है। इसका चरम परिणाम 'Man props' है।

संदर्भ सूची:

1. (क) चतुर्विधन्तु नेपथ्यं पुस्तो•लङ्कार एव च। तथाङ्गरचना चैव ज्ञेयः सञ्जीव एव च।। नाट्यशास्त्र 23/5
   (ख) नैपथ्यस्य विधानं स्यादाहार्यः स चतुर्विधः। पुस्तभूषागरचना सजीवः परिकल्पितः।। नृत्तरत्नावली 1/36
   (ग) चतुर्विधन्तु नेपथ्यं पुस्तो•लङ्कार एव च। तथाङ्गरचना चैव ज्ञेयः सजीवमेव च। नृत्यरत्नकोश 1/4/6
   (घ) चतुर्विधं तु नेपथ्यं पुस्तो•लङ्कारस्तथा। सञ्जीवश्चाङ्गरचना चेति पुस्तस्त्रिधा मतः।। नर्तन निर्णय
   (ङ) नानाविधं तथाप्येतच्चतुर्धा प्रोच्यते बुधैः। पुस्तमाल्यविभूषाङ्गपरिवर्तन– भेदतः। संगीतार्णवचन्द्रिका 5/387 और संगीतनारायण 3/142
2. संस्कृत–हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास
   (क) शैलयानविमानानि चर्मवर्मध्वजा नगाः। यानि क्रियन्ते नाट्ये हि स पुस्त इति सञ्जितः।। काष्ठचर्मसु वस्त्रेषु जतुवेणुदलेषु च। नाट्योपकरणानीह लघुकर्माणि कारयेत। ना. शा. 23/8
   (ख) मृदा वा दारुणा वापि वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा। लौहैरनुकृतिर्वापि पुस्त इत्यभिधीयते। विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3/27/3–4
   (ग) तत्र शैलविमानादि नाट्ये यद्यत्प्रदृश्यते। तत्तत्पुस्त इतिज्ञेयः स च त्रेधा विधीयते।। नृ० र० 1/37
   (घ) पुस्तः स उच्यते नाट्ये यद्विमानादि दृश्यते। नृ०र० को० 1/4/13
   (ङ) शैलयानविमानानि चर्मवर्मायुधध्वजाः। यानि क्रियन्ते तान्येव स पुस्त इति सज्ञितः। न०नि० 4/1/2/17–18
   (च) शैलयानविमानानि चर्मवर्मध्वनादयः। मृदा च दारुणावाथ वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा।।
3. लोहरत्नैः कृतं वापि पुस्तमित्यभिधीयते। शास्त्राणि सर्पाविकृतमुखानि च वपुषि च। यानि च क्रियते नाट्ये तत्पुस्तमिति कीर्त्यते।। स० अ० च० 5/388–398 और संगीतनारायण 3/143–145
   (क) अथ शीर्षविधानार्थम्–/ना० शा० 23/147–183
   (ख) देवदानवयक्षानां गजाश्वमृगपक्षिणाम्।
4. कार्याणि प्रतिशीर्षाणि नाट्यज्ञःपुस्तकर्मणा।। वि० ध० पु० 3/27/4–5 अश्वादयः च कर्तव्याश्चर्मकाष्ठादिभिः समाः।। वही, 3/29/18
   (क) पुस्तस्तु त्रिविधो ज्ञेयो नानारूपप्रमाणतः। सन्धिमो व्याजिमश्चैव वेष्टिमश्च प्रकीर्तितः।। ना. शा. 23/5

(ख) तत्तत्पुस्त इति ज्ञेयःस च त्रेधा विधीयते। आदिमस्सन्धिमस्तत्र मध्यमो व्याजिमःस्मृतः। अन्तिमश्चेष्टिमस्तेषाम्।। नृ०र० 1/37–38
(ग) पुस्तस्तु त्रिविधो ज्ञेयो नानारूपप्रमाणतः। सन्धिमो व्याजिमश्चैव चेष्टितश्च प्रकीर्तितः।। नृ०र० को० 1/4/7
(घ) पुस्तस्त्रिधा मतः। सन्धिमा व्याजिमा चैव चेष्टिमा चेति नामतः।। न० वि० 4/1/2/15
(ङ) तत्त्रिधा सन्धितं चैव व्याजितं चेष्टितं तथा/स०अ०च० 5/381 और संगीतनारायण 3/146

5. (क) किलिञ्जचर्मवस्त्राद्यैर्यद्रूपं क्रियते बुधैः। सन्धिमो नाम विज्ञेयः पुस्तो नाटकसंक्षयः।। ना० शा० 23/7
(ख) किलिञ्जैचर्मवस्त्राद्यसन्धानाः तत्र सन्धिमः। न०र० 1/38
(ग) किलिजैश्चर्मवस्त्राद्यैःसंधानात् सन्धिमो मतः।। नृ० र० को० 1/4/13
(घ) कीलितं वस्त्रचर्माद्यैर्यद्रूपं क्रियते नटैः। सन्धिमा... ।।नृ०नि० 4/2/2/16)
(ङ) कलिञ्जचर्मवस्त्रैश्च यत्पुस्तं क्रयते नटैः। सन्धितम्...।। स०अ०च० 5/381 और सङ्गीतनारायण 3/146

6. (क) व्याजिमो नाम विज्ञेयो यन्त्रेण क्रियते तु यः। ना०शा० 23/8
(ख) ..व्याजिमा ज्ञेयो यन्त्रेण क्रियते तु यः।। न नि० 4/1/2/16
(ग) ...तद् व्याजितं तु यन्त्रेण क्रियते हि यत्। स० अ० च० 5/5/3–91, और सङ्गीतनारायण 3/146

7. (क) व्याजः सूत्रस्य कर्षादिरूपः आक्षेपः तेन निर्वृत्तः व्याजिमः।
(ख) सूत्राकर्षादिभिर्व्याजैर्निर्वृत्तं व्याजिमं विदुः। नृ०र० 1/39
(ग) व्याजैः सूत्रार्षणाद्यै रचितो व्याजिमो मतः। नृ० र० को० 1/4/14

8. (क) वेष्ट्यते चैव यद्रूपं वेष्टिमः स तु सञ्जितः।। ना. आ. 23/8
(ख) जतुसिक्थादिसम्बन्धात् चेष्ट्यते यस्स चेष्टिमः।। नृ० र० 1/40
(ग) मधूच्छिष्टान्नजत्वादियोगैर्यश्चेष्ट्यते नटैः।। नृ० र० को 1/4/14
(घ) चेष्ट्यते चौव यद्रूपं चेष्टिमः स तु सञ्जितः। नृ० वि० 4/1/2/18
(ङ) चेष्टते तत्र यद्भूयस्तत्तु चेष्टितमुच्यते। स०अ० च० 5/392 और सङ्गीतनारायण 3/147

9. (क) अभि. शा०, अङ्क 1/6–14
(ख) मृच्छ०, अङ्क 6
(ग) बाल० रा०, अङ्क 1/30–33

10. (क) अभि० शा०, अङ्क 1/3–4, अङ्क 7
(ख) रामकथा सम्बन्धी रूपक यथा– प्रतिमा, अभिषेक, महावीरचरित, आश्चर्यचूडामणि, अनर्घराधव, बालरामायण, हनुमन्नाटक

11. (क) प्रतिज्ञा०, अङ्क 1, स्वप्नवा०
(ख) प्रतिमा०, अङ्क 3, बालरामायण, अङ्क 1

12. (क) सूत्रधारचलद्वारुगात्रेयं यन्त्रजानकी। वक्त्रस्थ सारिकालापा लङ्केन्द्रं वञ्चयिष्यति।। बाल० रा., अङ्क 5/6–2
(ख) कथासरित्सागर 2/4–5,18–20
(ग) प्रतिज्ञा०, अङ्क 1

13. ना० शा० 1, 60–62, 12/214–216
14. ना० शा० 167–62, 12/214–216
15. मोक्तव्यं नायुधं रङ्गे न छेद्यं न च ताडनम्। प्रादेशमात्रं गृह्णीयात् संज्ञार्थं शस्त्रमेव च।। अथवा
16. योगशिक्षाभिर्विद्या मायाकृतेन वा। शस्त्रमोक्ष–प्रकर्त्रव्यो रङ्कमध्ये प्रयोक्तृभिः।। ना० शा० 23/210–211
17. ना० शा० 23/200–209
18. (क) लौहैरनुकृतिर्वापि पुस्त इत्यभिधीयते। वि०ध०पु० 27/4
(ख) लोहरत्नैः कृतं वापि पुस्तमित्यभिधीयते।। स० अ० च० 5/39० और सङ्गीतनारायण 3/144
19. भिनं कुम्भे ततश्चैव नाट्याचार्यःप्रयत्नतः।
20. प्रगृह्य दीपिकां दीप्तां सर्वं रङ्गं प्रदीपयेत्।। ना० शा० 3/91
21. (क) रत्नावली में समुद्र के तूफान में वासवदत्ता का डूब जाना।
(ख) उत्तररामचरित। अभिज्ञानशाकुन्तल में यज्ञाग्नि का आधान, रामायण पर आधारित नाटकों में लङ्का–दहन, भास के अभिषेक नाटकों में सीता के अग्निप्रवेश में अग्नि का आधान, रत्नावली में ऐन्द्रजालिक द्वारा मायाग्नि का आधान।